जनसत्ता

मजबूरी की राजनीति

कहते हैं राजनीति में न कोई दोस्त होता है और न दुश्मन। दोस्त या दुश्मन जो भी होता है, राजनीतिक मजबूरियों, हितों और स्वार्थों की वजह से होता है। ये दोस्ती-दुश्मनी मौका-परस्त होती है। शुक्रवार को मैनपुरी में जब समाजवादी पार्टी के संरक्षक मुलायम सिंह यादव और बहुजन समाज पार्टी की प्रमुख मायावती मंच पर एक साथ आए तो लग ही नहीं रहा था दोनों के बीच लंबे समय से कोई गंभीर कटुता रही होगी या स्थायी दुश्मनी जैसी कोई बात थी। दोनों ने एक-दूसरे की तारीफ में जम कर कसीदे पढ़े, एक-दूसरे को जिताने के लिए वोट मांगे, मायावती ने मुलायम सिंह के प्रति जिस तरह से सम्मान दिखाया, उसके लिए उनकी जितनी तारीफ की जाए, कम होगी। मुलायम ने भी बड़प्पन दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। साथ मिल कर चुनाव लड़ने के लिए सपा और बसपा में गठबंधन तो पहले ही हो चुका था। लेकिन तबसे ये कयास लगाए जा रहे थे कि क्या मुलायम सिंह यादव और मायावती पुरानी बातों को भुला कर एक मंच पर आएंगे! हालांकि दोनों नेताओं ने गठबंधन बहुत ही मजबूरी में और सोच-समझ कर किया है। दोनों को अपने राजनीतिक अस्तित्व को लेकर खतरा साफ नजर आ रहा था। ऐसे में उत्तर प्रदेश की राजनीति से लेकर केंद्र तक में एक बड़ी चुनौती के लिए सपा-बसपा गठजोड़ की जरूरत महसूस की गई।

उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा के गठबंधन की पहली सरकार 1993 में बनी थी। तब मुलायम सिंह मुख्यमंत्री थे। लेकिन, जैसा कि कहा जाता है, उन्हें इस बात का डर सता रहा था कि भाजपा बसपा को समर्थन देकर उन्हें हटा सकती है और मायावती को मुख्यमंत्री बनवा सकती है। सत्ता को लेकर इस तरह की आशंकाओं की परिणति दो जून 1995 को देखने को मिली, जब लखनऊ के राज्य अतिथि गृह में सपा विधायकों और कार्यकर्ताओं ने मायावती और उनके विधायकों पर हमला बोल दिया। मायावती ने तब किसी तरह अपनी जान बचाई। इस हिंसक घटना के बाद सपा और बसपा के रास्ते हमेशा के लिए अलग हो गए थे। दोनों दलों के प्रमुख एक-दूसरे को फूटी आंख नहीं सुहाते थे। ढाई दशक के दौरान सपा भी सत्ता में रही और बसपा भी, लेकिन कहीं कोई मेल-मिलाप की संभावना नहीं बनी, उल्टे एक-दूसरे को सबक सिखाने के संकल्प किए गए थे।

उत्तर प्रदेश में ढाई दशक तक सपा और बसपा पिछड़ों और दलितों के नाम पर सत्ता में आती-जाती रहीं। देश की दलित राजनीति को एक नया आयाम भी मिला। लेकिन जनता लंबे समय से इन दोनों दलों के शासन से उकता गई और पिछले लोकसभा और विधानसभा चुनाव में सपा-बसपा को उनकी हैसियत दिखा दी। सन् 2007 में पूर्ण बहुमत हासिल कर सत्ता में आने वाली बसपा को पिछले लोकसभा चुनाव में एक भी सीट नहीं मिली थी। 2017 में सूबे की सत्ता से सपा बाहर हो गई। इसके बाद से ही दोनों दल इस जमीनी हकीकत को समझने लगे थे कि अगर मिल कर चुनाव नहीं लड़ा तो स्थायी रूप से उत्तर प्रदेश की सत्ता से छुट्टी हो सकती है। दोनों दलों का पहला मकसद भाजपा को शिकस्त देना है। सब जानते हैं कि आज मुलायम सिंह और मायावती राजनीतिक मजबूरियों की वजह से एक-दूसरे का सम्मान कर रहे हैं। हालांकि दोनों नेताओं के लिए निजी दुश्मनी भी भुला देने के लिए इससे बेहतर और क्या वक्त हो सकता है!

आतंक का दायरा

श्रीलंका में हुए बम धमाके आतंकवाद से लड़ने को प्रतिबद्ध विश्व बिरादरी के लिए एक नई चुनौती है। श्रीलंका के तीन गिरजाघरों, तीन पांच सितारा होटलों और दो अन्य जगहों पर हुए शृंखलाबद्ध बम धमाकों में अब तक दो सौ से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं और साढ़े चार सौ से ऊपर घायल हैं। अभी तक इन हमलों की जिम्मेदारी किसी संगठन ने नहीं ली है। पर हमलों की प्रकृति को देखते हुए अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि इसमें शामिल संगठन का मकसद क्या था। हालांकि श्रीलंका लंबे समय तक गृहयुद्ध की चपेट में रहा है। वहां तमिल समुदाय के लोगों में जब-तब अपने प्रति भेदभाव का दंश उभरता रहा है। पर अब तमिल लिबरेशन टाइगर जैसे संगठन ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि इतने बड़े स्तर पर सुनियोजित हमले कर सकें। ताजा घटना के बारे में श्रीलंका सरकार ने कहा है कि ये हमले धार्मिक कट्टरपंथी संगठन ने किए हैं। रविवार को ईस्टर का त्योहार था। चर्चों में ईस्टर का उत्सव चल रहा था। इसी तरह होटलों में आयोजन हो रहे थे। इन धमाकों में कई विदेशी नागरिक भी मारे गए हैं। इसे देखते हुए साफ है कि हमलावरों का निशाना ईसाई समुदाय के लोग थे। इसलिए स्वाभाविक ही शक की सुई अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय आतंकवादी संगठनों की तरफ जा रही है।

श्रीलंका में गृहयुद्ध समाप्त होने के बाद छिटपुट हिंसक झड़पें होती रही हैं। बहुसंख्यक सिंहली समुदाय के लोग वहां की मस्जिदों पर हमले करते रहे हैं। इसके चलते पिछले साल वहां आपातकाल भी लगाना पड़ा था। इस तरह यह आशंका हो सकती है कि वहां के अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों में अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों की टीस दबी होगी और वे इसके प्रतिकार की योजना बना रहे होंगे। पर ताजा हमलों में जितने बड़े पैमाने पर विस्फोटक और सुनियोजित रणनीति अपनाई गई है, वह सामान्य रूप से बदले की भावना की उपज नहीं हो सकती। श्रीलंका सरकार का कहना है कि सभी जगहों पर आत्मघाती हमले हुए। हालांकि अभी इन हमलों में इस्तेमाल किए गए विस्फोटकों की जांच बाकी है। पर यह सवाल अपनी जगह बना हुआ है कि इन आत्मघाती हमलावरों को साजो-सामान कहां से उपलब्ध हुआ होगा। उन्हें प्रशिक्षण कहां से मिला होगा। फिर किस तरह वे सुरक्षा एजेंसियों को चकमा देकर अपनी साजिशों को अंजाम देने में कामयाब हो गए। हालांकि श्रीलंका सरकार का कहना है कि इन हमलों की सूचना खुफिया एजेंसियों ने दी थी, पर जब तक काबू पाया जाता, तब तक विस्फोट हो गए। पर इससे उसके खुफिया और सुरक्षा इंतजामों की जवाबदेही पर सवाल समाप्त नहीं हो जाते।

श्रीलंका में हुए ताजा हमलों की प्रकृति से स्पष्ट है कि इसमें अंतरराष्ट्रीय आतंकवादी संगठनों की मिलीभगत है। छिपी बात नहीं है कि आइएसआइएस जैसे संगठन किस तरह दुनिया के तमाम देशों में इस्लामी कट्टरपंथ की जड़ें फैलाने में जुटे हुए हैं। खासकर जहां मुसलिम समुदाय पर अन्य समुदायों के हमले अधिक होते रहे हैं, वहां उनके लिए अपनी उपस्थिति बनाने में आसानी होती है। वे दुनिया के तमाम देशों में इसी तरह होटलों और भीड़भाड़ वाली जगहों पर आत्मघाती हमले कर चुनौती देते रहे हैं। श्रीलंका में भी इसी तरह उन्होंने घुसपैठ बनाई हो, तो हैरानी की बात नहीं। हालांकि पूरी स्थिति जांच के बात ही स्पष्ट होगी, पर स्पष्ट है कि यह आतंकवाद से लड़ने वाले राष्ट्रों के लिए यह बड़ी चुनौती है।

कल्पमेधा

उस जीवन को नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं,
जिसको बनाने की शक्ति हममें न हो।
– महात्मा गांधी

मजबूत बैंकों की जरूरत

जयंतीलाल भंडारी

अर्थ विशेषज्ञों का कहना है कि छोटे और कमजोर सरकारी बैंकों में पूंजी डालने का फैसला बैंकिंग सुधार की दिशा में बड़ा कदम है। इससे सरकारी बैंकों की माली हालत सुधरेगी और बैंक फिर से खड़े हो सकेंगे। इस वक्त सबसे बड़ी चुनौती ही बैंकिंग व्यवस्था को मजबूत बनाने की है। इसके लिए सबसे बड़ी और पहली जरूरत गैर-निष्पादित आस्तियों (एनपीए) की समस्या का समाधान करना है। इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की कर्ज वसूली प्रणाली को बेहतर बनाना होगा।

पिछले हफ्ते आई भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआइ) की एक शोध रिपोर्ट में कहा गया है कि बैंकों के विलय और कंप्यूटरीकरण के कारण बैंकों की दक्षता बढ़ी है। साथ ही बैंकों में नौकरियों में कटौती करने से जो खर्च बचा है उससे सरकारी बैंकों ही हालत में सुधार आया है। उल्लेखनीय है कि एक अप्रैल को बैंक ऑफ बड़ौदा में विजया बैंक और देना बैंक के विलय के बाद भारत के सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में बैंक ऑफ बड़ौदा दूसरा सबसे बड़ा बैंक बन गया है। इसके साथ ही देना बैंक और विजया बैंक की सभी शाखाएं बैंक ऑफ बड़ौदा की शाखा के रूप में काम करने लगीं। अब इस एकीकरण के बाद बैंक ऑफ बड़ौदा के पास साढ़े नौ हजार से अधिक शाखाएं और करीब साढ़े तेरह हजार एटीएम हो गए हैं। एकीकरण के बाद बैंक ऑफ बड़ौदा एक करोड़ बीस लाख से ज्यादा ग्राहकों को सेवाएं दे रहा है। इस एकीकरण के बाद बैंक ऑफ बड़ौदा का महाराष्ट्र, गुजरात, केरल तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में पूरक शाखाओं का नेटवर्क बढ़ गया है।

गौरतलब है कि बैंक ऑफ बड़ौदा में विजया बैंक और देना बैंक के विलय के बाद देश और दुनिया के अर्थविशेषज्ञ इसे बैंकिंग सुधार की दिशा में बड़े एवं मजबूत कदम के रूप में देख रहे हैं। पिछले दो वर्षों से सरकारी बैंकों को मजबूत बनाने के लिए लगातार प्रयास हो रहे हैं। 23 अगस्त, 2017 को कैबिनेट ने सार्वजनिक बैंकों के एकीकरण में तेजी लाने के प्रस्ताव को मंजूरी दी थी। पिछले वर्ष 24 जुलाई को केंद्र सरकार ने भारतीय रिजर्व बैंक से उन सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) के बारे में राय मांगी थी जिनका विलय किया जा सकता है। बैंकिंग क्षेत्र में दो तिहाई से ज्यादा हिस्सेदारी सरकारी बैंकों की है। सरकार की रणनीति अगले तीन वर्षों में सरकारी बैंकों की संख्या घटा कर दस से बारह के बीच लाने की है। उल्लेखनीय है कि छोटे बैंकों को बड़े बैंक में मिलाने का फार्मूला केंद्र सरकार पहले भी अपना चुकी है। दो साल पहले एक अप्रैल 2017 को भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआइ) के पांच सहायक बैंकों और भारतीय महिला बैंक (बीएमबी) का एसबीआइ में विलय किया गया था। भारत में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया जैसे बड़े बैंकों में सहायक बैंकों के विलय से उद्योग कारोबार व विभिन्न वर्गों की कर्ज की बड़ी जरूरतें पूरी करने में आसानी हुई है।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि सरकार ने बैंकिंग सुधारों के लिए जो कदम उठाए गए हैं, उनसे भी सरकारी बैंकों की स्थिति सुधरने लगी है। पिछले वर्ष 22 नवंबर को केंद्र सरकार ने बैंकों के साथ धोखाधड़ी करके विदेश भागने जैसी घटनाओं को रोकने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के सभी बैंकों के अध्यक्ष, प्रबंध निदेशकों और मुख्य कार्याधिकारियों को अधिकार सम्पन्न बनाया है। इस अधिकार के बाद कर्ज चुकाने में जानबूझ कर चूक करने वाले कजर्दारों के खिलाफ एफआइआर दर्ज करने और उनके लिए लुकआउट नोटिस जारी करने का आग्रह अब बैंक के शीर्ष अधिकारी सीधे गृह मंत्रालय से कर सकेंगे। बैंक प्रमुखों को ऐसा अधिकार पहले नहीं था। सामान्यतः जांच एजेंसियां जानबूझ कर चूक करने वाले कर्जदारों के खिलाफ शिकायत पर एफआइआर दर्ज करने में खासा समय ले लेती थीं। इस संबंध में केंद्र सरकार के नए अहम कदम से बैंक के चूककर्ताओं के लिए देश से भागने की कोई गुंजाइश नहीं होगी।

पिछले दिनों वैश्विक रेटिंग एजेंसी मूडीज ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि भारत में सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) में जो अतिरिक्त पूंजी डाल रही है, उससे बैंकों में फंसे कर्ज (एनपीए) की समस्या से निपटने में मदद मिलेगी। इसमें कहा गया है कि वर्ष 2019 के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को बहुत ज्यादा बाहरी पूंजी की जरूरत नहीं होगी। अर्थ विशेषज्ञों का कहना है कि छोटे और कमजोर सरकारी बैंकों में पूंजी डालने का फैसला बैंकिंग सुधार की दिशा में बड़ा कदम है। इससे सरकारी बैंकों की माली हालत सुधरेगी और बैंक फिर से खड़े हो सकेंगे। इस वक्त सबसे बड़ी चुनौती ही बैंकिंग व्यवस्था को मजबूत बनाने की है। इसके लिए सबसे बड़ी और पहली

जरूरत गैर-निष्पादित आस्तियों (एनपीए) की समस्या का समाधान करना है। इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की कर्ज वसूली प्रणाली को बेहतर बनाना होगा। रिजर्व बैंक के गवर्नर शक्तिकांत दास ने कहा है कि लंबे समय तक दबाव में रहने के बाद अब बैंकिंग क्षेत्र की स्थिति सुधार के रास्ते पर है। बैंकों पर एनपीए का बोझ कम होने लगा है। सितंबर 2018 तक की अवधि में सकल एनपीए अनुपात में कमी आई है। पिछले तीन साल के दौरान इसमें यह पहली गिरावट है। यह बढ़ते दबाव के समक्ष बैंकों के मजबूती से खड़े होने की क्षमता के तौर पर सकारात्मक संकेत है। वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट 2019 के मुताबिक बैंकों का सकल एनपीए अनुपात सितंबर 2018 में घट कर 10.8 प्रतिशत रह गया, जो मार्च 2018 में 11.5 प्रतिशत पर पहुंच गया था। रिपोर्ट में कहा गया है कि मौजूदा परिदृश्य को देखते हुए सभी बैंकों का सकल एनपीए मार्च 2019 तक कम होकर 10.3 प्रतिशत रह जाने का अनुमान है।

सरकार की जनहित की योजनाएं सरकारी बैंकों पर ही आधारित हैं, ऐसे में मजबूत सरकारी बैंकों की जरूरत स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। देश भर में चल रही विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के लिए धन की व्यवस्था करने और उन्हें बांटने की जिम्मेदारी सरकारी बैंकों को सौंपी गई है। सरकारी बैंकों मुद्रा लोन, शिक्षा के लिए कर्ज और किसान क्रेडिट कार्ड के जरिए बड़े पैमाने पर कर्ज बांट रहे है। चूंकि बीमा या सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ लेने के लिए बैंक खाता जरूरी है। ऐसे में ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग सुविधाओं की भारी कमी है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार 31 मार्च, 2018 तक जनधन योजना के तहत 31.44 करोड़ खाते खुले थे। 2014 से 2017 के बीच दुनिया में इक्यावन करोड़ बैंक खाते खुले। इसमें से छब्बीस करोड़ खाते केवल भारत में जन-धन योजना के अंतर्गत खुले। भारत में इस अवधि में छब्बीस हजार नई बैंक शाखाएं भी खुलीं। ऐसे में भारत की नई बैंकिंग जिम्मेदारी बैंकों के निजीकरण से संभव नहीं है। ऐसी जिम्मेदारी मजबूत सरकारी बैंक ही निभा सकते हैं।

निसंदेह सार्वजनिक क्षेत्र के छोटे और कमजोर बैंकों का एकीकरण नए बैंकिंग युग की जरूरत है। इस समय जहां देश के बैंकिंग क्षेत्र में बड़े आकार के बैंकों की जरूरत है वहीं यह भी जरूरी है कि सरकार बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के कार्य पर निगरानी और नियंत्रण भी रखे। बैंकों को दी गई भारी-भरकम नई पूंजी के आबंटन की उपयोगिता और प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर करेगी कि बैंक इसका इस्तेमाल कितने प्रभावी ढंग से करेंगे और फंसे हुए कर्ज से कैसे निपटेंगे। बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के साथ-साथ बड़े और मजबूत सरकारी बैंकों को आकार देने की रणनीति भी लाभप्रद होगी। ऐसा होने पर ही बैंकों में नए निवेश से सभी प्रकार के छोटे-बड़े उद्योग लाभान्वित होंगे और बैंक अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में टिक सकेंगे। उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के कमजोर और मजबूत बैंकों के एकीकरण की प्रक्रिया को जारी रखेगी। देश के सरकारी बैंकों द्वारा नई तकनीकी क्षमताओं के साथ खर्च में कमी की जाएगी। बैंक डिजिटल भुगतान के लिए इस्तेमाल की जा रही पुरानी पड़ गई पाइंट ऑफ सेल (पीओएस) मशीनों को बदल कर परिष्कृत पीओएस मशीनों का उपयोग करने की दिशा में बढ़ेंगे। आर्थिक सुधारों की असली कुंजी मजबूत बैंकिंग क्षेत्र ही है।

बोली की मार

ललित कुमार

दुनिया मेरे आगे

बचपन में हमें सिखाया गया था कि वाणी का एक पर्यायवाची शब्द 'सरस्वती' भी होता है। वैसे तो भारतीय संस्कृति की हिंदू परंपरा में किसी भी काम की शुरुआत 'गणेश' का नाम ले कर करने की परंपरा रही है। तुलसीदास अपने ग्रंथ 'रामचरितमानस' के आरंभ में वाणी यानी सरस्वती की आराधना गणेश से भी पहले करते हैं। इस काव्य के पहले श्लोक में तुलसीदास लिखते हैं- 'वंदे वाणीविनायकौ', यानी मैं सरस्वती और गणेश की वंदना करता हूं। भाषा और सरस्वती का यह विनिमेय न केवल भारतीय संस्कृति में भाषा की महत्ता को रेखांकित करता है, बल्कि आज के चुनावी दौर में काफी प्रासंगिक है। यह छिपा नहीं है कि भाषा का स्तर चुनावी सरगर्मी के बीच गिरता जा रहा है और कोई भी राजनीतिक दल इससे अछूता नहीं है।

जिस देश में आज से पांच सौ साल पहले से ही ऐसे ग्रंथों की रचना होती आई है, सामान्य व्यवहार में अक्सर 'मीठी वाणी' को बहुत महत्त्व दिया गया है, बोलने के लहजे को बेहतर या कमतर मनुष्य होने का रूपक माना गया, अक्सर दुश्मनों और नकारात्मक प्रवृत्ति वाले लोगों के लिए भी सम्मानपूर्ण भाषा का इस्तेमाल किया जाता रहा हो, उसी देश के सार्वजनिक जीवन में भाषा का गिरता स्तर आखिरकार क्या दर्शाता है! ब्रिटिश लेखक जॉर्ज ऑरवेल ने अपने प्रसिद्ध आलेख 'पॉलिटिक्स एंड द इंग्लिश लैंग्वेज' (1946) में कहा था कि अंग्रेजी भाषा के गिरते स्तर का सीधा संबंध राजनीतिक और सामाजिक मूल्यों में गिरावट से है।

ऐसा लगता है कि हमारे राजनेताओं और बुद्धिजीवियों की नजर में इस तरह की बातों का कोई मूल्य नहीं है। क्या हम कभी इस पर विचार करते हैं कि अपने विरोधियों के लिए जिस तरह की भाषा का इस्तेमाल अखबारों में, समाचार चैनलों पर और सोशल मीडिया में किया जाता है, उसका समाज पर और खास कर बच्चों पर क्या दुष्परिणाम होगा? क्या अपने विरोधियों को धराशायी कर किसी भी कीमत पर सत्ता हासिल करना ही राजनीति का एक मात्र लक्ष्य रह गया है? क्या हमारे यहां लोकतंत्र की परंपरा अब यह नया मानक रचेगी कि हमारे भीतर की लोकतांत्रिक भावनाएं और विचार को खत्म होना होगा? क्या हम सभ्यता के उस दौर में कदम रखने जा रहे हैं जहां अपने से भिन्न मत रखने वाले और कमजोर तबकों के लोगों के अधिकारों के लिए कोई जगह नहीं होगी?

ब्रिटिश पत्रकार और उपन्यासकार रॉबर्ट हैरिस के ऐतिहासिक उपन्यास 'डिक्टेटर' में प्राचीन रोम के प्रसिद्ध राजनेता और कुशल वक्ता सिसरो का कहना है कि राजनेता का प्रमुख लक्ष्य अपने देश की खुशी होनी चाहिए, न कि यश हासिल करने की लालसा। लेकिन जब किसी भी कीमत पर सत्ता, वैभव और धन पहली प्राथमिकता बन जाए तो भाषा और नैतिकता दोनों का पतन आश्चर्य की बात नहीं।

आज के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य में भाषा के गिरते हुए स्तर को देखते हुए दिनकर की 'रश्मिरथी' से ये पंक्तियां बरबस याद आती हैं। इन पंक्तियों में कर्ण कृष्ण से कहते हैं- 'वृथा है पूछना, था दोष किसका/ खुला पहले गरल का कोष किसका/ जहर अब तो सभी का खुल रहा है/ हलाहल से हलाहल धुल रहा है।' जिस तरह से महाभारत के युद्ध में धर्म का उल्लंघन दोनों तरफ से हुआ था, ठीक उसी प्रकार किसी एक राजनेता या दल को भाषा के गिरावट के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। न जाने भाषा के स्तर पर हलाहल से हलाहल धोने की प्रवृत्ति भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में कब और कैसे आ गई और कब तक रहेगी? प्रश्न यह उठता है कि इस नैतिक पतन के परिणाम कितने दूरगामी होंगे?

ऑरवेल ने यह भी कहा था कि अगर हमारे विचार हमारी भाषा को भ्रष्ट कर सकते हैं तो हमारी भाषा भी हमारे विचारों को भ्रष्ट कर सकती है। अपरिष्कृत विचार अपरिष्कृत भाषा की जननी है या इसके विपरीत अनैतिक भाषा अनैतिक विचार को जन्म देती है। यह एक विचारणीय प्रश्न हो सकता है। लेकिन इस बात पर कोई दो मत नहीं हो सकता कि हमें अपने विरोधियों का भी सम्मान करना चाहिए। सुभाषचंद्र बोस और महात्मा गांधी में वैचारिक मतभेद थे, लेकिन दोनों ही एक दूसरे का सम्मान करते थे।

भाषा में गिरावट का एक प्रमुख कारण है हाल के दिनों में किताब पढ़ने की संस्कृति में लगातार गिरावट। जब ज्ञान का स्रोत मानक किताबें न हो कर सोशल मीडिया के हल्के-फुल्के के संवाद हो जाएं तो वाद-विवाद की संस्कृति का पतन तो अवश्यंभावी है। किताबें हमें नैतिकता का मूल्य पढ़ाती हैं, संवेदनशील बनाती हैं और अपने विरोधियों का भी सम्मान करना सिखाती है। लेकिन वर्तमान समय में जिस तरह की भाषा का इस्तेमाल हम अपने विरोधियों के लिए करते हैं, वह भविष्य में हमारे लिए कहीं शर्मिंदगी का सबब न बन जाए। बशीर बद्र के शब्दों में- 'दुश्मनी जमकर करो पर ये गुंजाइश रहे/ जब कभी हम दोस्त हो जाएं तो शर्मिंदा न हों।'

चौपाल

अनाज की बर्बादी

किसान सालभर सर्दी, गर्मी और बरसात सहकर अन्न का उत्पादन करता है, लेकिन बेमौसम बारिश और भारी ओलावृष्टि उसकी सारी मेहनत पर पानी फेर रही है। बारिश के कारण फसलों को भारी नुकसान हुआ है। यह विडंबना ही है कि प्रकृति हमें भरपूर खाद्यान्न दे रही है, लेकिन हम उसका व्यवस्थित तरीके से भंडारण भी नहीं कर पा रहे हैं। हर साल भंडारण क्षमता की कमी के कारण बरसाती पानी से लाखों टन अनाज सड़ जाता है। अनाज की बर्बादी रोकना सरकार के साथ-साथ हमारा भी फर्ज है, ताकि हर जरूरतमंद को अनाज मिले। भारतीय संस्कृति में अन्न को भगवान के समान माना जाता है, तो फिर उसकी बर्बादी हम भला कैसे सहन कर सकते हैं? भूख से लड़ाई जीतने के लिए हमें अन्न के संरक्षण के बारे में सोचना होगा। किसानों की मदद के साथ-साथ अनाज के भंडारण की अच्छी व्यवस्था किया जाना भी बहुत जरूरी है।

● *डॉ राजेंद्र कुमावत, जयपुर*

काम देखकर दें वोट

विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के चुनावी महापर्व का आगाज हो चुका है। देश के दो मुख्य दलों के घोषणापत्रों पर नजर दौड़ाएं तो कोई भी वादों को पूरा करने वाला नहीं लगता। सत्ताधारी दल भाजपा जहां युवाओं से अपना पहला वोट शहीदों को देने की मांग कर रहा है। वहीं कांग्रेस जीडीपी का छह फीसद शिक्षा पर खर्च करने और 22 लाख खाली पदों को भरने की बात कर रही है। मतदाता को डर सता रहा है कहीं वो गलत सरकार न चुन ले और उसे फिर से पछताना पड़े। क्योंकि पिछली बार जो वादे किए गए थे, उनसे सरकार पूरी तरह मुकर चुकी है। समझने वाली बात यह है कि जब तक हम इन राजनीतिक दलों के जाल में फंसते जाएंगे, ये ऐसे ही हमारा शोषण करते रहेंगे और हमें झूठे वादों में फंसाते रहेंगे। इतनी सूचना तकनीक होने के बावजूद अगर हमने एक उचित सरकार नहीं चुनी तो आने वाले समय में हम और पीछे चले जाएंगे। भले ही हमारे देश का विदेशों में गुणगान हो रहा हो, लेकिन देश के अंदर के हालात ठीक नहीं है। जब तक कोई भी पार्टी कुर्सी की भूखी होगी वो देश को आगे बढ़ा ही नहीं सकती है। हमें अपना वोट चेहरे पर नहीं बल्कि काम और रोजगार पर देना होगा क्योंकि अभी इसकी बहुत जरूरत है।

● *आशीष, दिल्ली विश्वविद्यालय*

हाशिए पर उक्रांद

उत्तराखंड आंदोलन से जुड़े लोग इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि पृथक राज्य निर्माण में उत्तराखंड क्रांति दल (उक्रांद) की प्रमुख भूमिका रही है। हालांकि इस जन आंदोलन से कोई ऐसा नेता उभरकर सामने नहीं आया जिस पर पूरे उत्तराखंड को भरोसा होता। छोटे से राज्य में तीन स्थानीय बोलियों को राजभाषा के पद पर आसीन कराने का सपना देखने वाले भूल गए कि गुजरात से ताल्लुक रखने वाले बापू ने भारत की राजभाषा के रूप में हिंदुस्तानी को वरीयता दी थी। कुछ लोग मानते हैं कि साधनों की कमी के कारण राष्ट्रीय दलों के सामने उक्रांद टिक नहीं पाया, यह सरासर गलत है। दरअसल, हम एक ऐसा नेता नहीं पा सके जिसके प्रति समाज के एक बड़े हिस्से की अगाध श्रद्धा हो। उक्रांद के जो गिने-चुने लोग शुरू में विधायक बने, वे सत्ता के लोभ से खुद को बचा नहीं पाए। पहाड़ का भ्रमण करने के बजाय हमारे नेता विदेश भ्रमण करने लगे। उनका तर्क था कि वे विदेश जाकर उत्तराखंड के विकास के रास्तों का पता लगाएंगे। हंसी आती है उनके इस तर्क पर। कोई गरीब अमीरों के यहां जाकर शादी के तौर-तरीके सीखने का बहाना बनाए तो हंसी ही आएगी।

● *सुभाष चंद्र लखेड़ा, दिल्ली*

पाकिस्तान से रिश्ते खत्म हों

नियंत्रण रेखा से व्यापार की शुरुआत पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की विरासत थी, जिसे पिछली यूपीए सरकार ने जारी रखा। उसके बाद पिछले 59 महीने तक एनडीए सरकार ने भी इस व्यापार को जारी रखा, लेकिन अब जब कुछ ही हफ्तों में देश में नई सरकार आने वाली है तो गृह मंत्रालय की ओर से इस व्यापार को बंद करने का आदेश आ गया है। हालांकि यह आरोप सही है कि व्यापार के बहाने देश के भीतर अवैध मादक पदार्थ, नकली मुद्रा और घुसपैठियों का प्रवेश होता था, लेकिन इस फैसले को चुनाव के बीच में लिए जाने की क्या जरूरत थी? इससे पहले भी लिया जा सकता था क्योंकि इस मामले में खुफिया रिपोर्ट तो काफी समय से मिल रही होगी। भारत और पाकिस्तान के बीच करतारपुर गलियारे पर काम चल रहा है, समझौता एक्सप्रेस चल रही है, कूटनीतिक संबंध भी बदस्तूर जारी हैं। इन सबके बीच सिर्फ व्यापार बंद कर देना और पाकिस्तान से सबसे पसंदीदा राष्ट्र का दर्जा वापस ले लेना, ये सब सिर्फ सांकेतिक बातें हैं। पाकिस्तान हमारा दुश्मन है तो उससे हर तरह का संबंध खत्म किया जाना चाहिए।

● *जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर*

बेरोजगारी पर हो बात

चुनाव के मौसम में लगभग सभी पार्टी के नेताओं की ओर से अमर्यादित भाषा का इस्तेमाल रुकने का नाम नहीं ले रहा। कोई महिलाओं पर अभद्र टिप्पणी कर रहा है तो कोई जाति-धर्म के नाम पर लोगों को बांट रहा है और हम चुपचाप देख रहे हैं। हमारी सोच इतनी सीमित हो गई है कि हम तर्क भी नहीं कर पा रहे हैं। हम उन्हीं नेताओं का चुनाव करते हैं जो हमारी मां-बहनों पर अभद्र टिप्पणी करते हैं। हम ऐसे ही नेता को अपना मसीहा मानते हैं जो किसी न किसी आपराधिक मामले में फंसा हो। आज जिस तरह देश में महंगाई व बेरोजगारी बढ़ रही है उस पर कोई बात नहीं कर रहा है। नौजवान रोजगार के लिए दर-दर भटक रहे हैं, किसान आत्महत्या कर रहे हैं, यह हमारे लिए चिंता का विषय है। तो आइए, हम सब मिलकर जाति-धर्म से ऊपर उठकर अपना वोट ऐसे प्रत्याशियों को दें जो हमारे हित की बात करें।

● *सफी अंजुम, पटना*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com